हउमै (अहम्)

भाग – १

संसार के सभी श्रेष्ठ धर्मों के अनुसार **ईश्वर 'एक' है।** गुरबाणी के प्रारम्भ में भी "१" (एक) अक्षर आया है जो ईश्वर की **'एकता'** का प्रतीक है। इस "१" के साथ "ਓ" (ओंकार) अक्षर ईश्वर के विकास और विस्तार का प्रकटाव तथा प्रतीक है। इस **इलाही 'विस्तार'** को गुरबाणी में इस प्रकार दर्शाया गया है–

सोधत सोधत सोधत सीझिआ ॥
गुर प्रसादि ततु सभु बूझिआ ॥
जब देखउ तब सभु किछु मूलु ॥
नानक सो सूखमु सोई असथूलु ॥ (पृ. २८१)

ईतहि ऊतहि घटि घटि घटि घटि तूंही तूंही मोहिना ॥
कारन करना धारन धरना एकै एकै सोहिना ॥ (पृ. ४०७)

घट घट महि हर जू बसै संतन कहिओ पुकारि ॥ (पृ. १४२६)

ओंकारि अकारु करि पउणु पाणी बैसंतरु धारे।
धरति अकास विछोड़िअनु चंद सूरु दुइ जोति सवारे।
खाणी चारि बंधान करि लख चउरासीह जूनि दुआरे।
इकस इकस जूनि विचि जीउ जंत अणगणत अपारे ॥ (वा.भा.गु. ४/१)

अकाल पुरख सभी जीवों में अपने **'हुक्म' द्वारा स्वयं ही कार्य कर रहा है तो फिर यह हमारा 'अहम्'–**

१. क्या है?
२. कहां से उत्पन्न हुआ है ?

३. इसका **बोलबाला** कैसे चल रहा है?

४. इसने क्यों दुनिया में **हाहाकर मचा रखा** है?

५. इसने क्यों दुनिया को **"अग्नि शोक सागर"** बना रखा है?

६. इसने दुनिया को कैसे अपने **बंधन** में जकड़ा हुआ है ?

७. यह कैसे हमें **यम के वस** में डालती है?

८. इससे **मुक्ति** कैसे हो सकती है ?

९. **अहम्** को कैसे **नष्ट** किया जा सकता है ?

१०. इसके **भ्रम का अन्धकार** कैसे दूर हो सकता है?

इन सभी प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए गहन विचार करने की आवश्यकता है। इन गुप्त **तथ्यों तथा भेदों** को गुरबाणी के प्रकाश में खोलने का प्रयास किया जाता है।

अपने पृथक व्यक्तित्व का अहसास, मैं—मेरी की पूर्ती और दिखावे वाली वृत्ति या चेतना (egoistic conciousness) **को ही 'अहम्' कहा जाता है।**

सृष्टि के आदि से प्रभु ने यह **विकसित 'अहम्'** मनुष्य के अन्दर डाल दी। इस अहम् के कारण ही जीव **मैं—मेरी का अपनत्व अनुभव करता है।**

जिनि रचि रचिआ पुरखि बिधातै नाले हउमै पाई ॥
जनम मरणु उस ही कउ है रे ओहा आवै जाई ॥ (पृ. ९९९)

हउमै एहो हुकमु है पइऐ किरति फिराहि ॥ (पृ. ४६६)

हउमै विचि जगु उपजै पुरखा नामि विसरिऐ दुखु पाई ॥ (पृ. ९४६)

हउमै बिखु पाइ जगतु उपाइआ सबदु वसै बिखु जाई ॥ (पृ. १००९)

हउमै मोहु उपजै संसारा ॥ (पृ. १०५७)

निष्पक्ष रूप से यदि हम अर्न्तमुखी हो कर अपने मन की जांच करें तो पता चलेगा कि हमारे जीवन के **हर पक्ष में अहम् का ही बोलबाला तथा प्रचलन है।**

ईश्वर ने अपनी **'मौज'** में अपने **'कवाउ'** द्वारा सृष्टि की रचना की तथा

प्रत्येक कण में अपनी **'ज्योति'** डाल कर इस **'खेल-अखाड़े'** की रचना की। **"इस वड खेल तमाशे"** विराट नाटक को त्रुटिरहित तथा अटल 'नियमों' पर चलाने के लिए **'हुकम' जारी कर दिया।**

हुकमि होवनि आकार हुकमु न कहिआ जाई ।।
हुकमि होवनि जीअ हुकमि मिलै वडिआई ।।
हुकमि उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ।।
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ।।
हुकमै अंदरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ।।
नानक हुकमै जे बूझै त हउमै कहै न कोइ ।। (पृ. १)

नाटक (drama) में **भिन्न-भिन्न कलाकार भिन्न-भिन्न प्रकार के 'पार्ट' (part) अदा करते हैं** तथा रंगमंच (stage) पर उनकी प्रत्येक हरकत, अदा, बोलचाल अपने मालिक की किसी योजना (scheme) के अनुसार **नियमबद्ध होती है।** रंगमंच पर कोई राजा, कोई रानी, कोई नौकर, कोई दाता, कोई भिखारी आदि अनेक भेष धारण करके **अपना-अपना 'पार्ट' अदा करते हैं।** परन्तु प्रत्येक कलाकार को इस बात का निश्चय होता है कि **वास्तव में** वह राजा, रानी या नौकर नहीं है अपितु यह तो **क्षण-भंगुर 'स्टेज'** पर अपना नीयत 'पार्ट' अदा करने के लिए आए हैं, वास्तिविकता में वह अपने मालिक के **नौकर ही हैं।** उन्हें यह अहसास होता है कि वह **स्वतन्त्र नहीं हैं तथा** अपनी मन-मानी नहीं कर सकते। यदि कोई पात्र भूल से या **बागी होकर** स्टेज पर अपनी मन मानी करे तो सारे नाटक में **विघ्न** पड़ जाता है और इसके लिए उसको **दण्ड मिलता है।**

ठीक इसी प्रकार सृष्टि के मालिक ईश्वर ने असीम **'हुकम'** द्वारा इस सांसारिक **'वड खेल तमाशा'** विराट-नाटक (cosmic drama) की रचना की है, जिसमें हम सभी जीव अपना-अपना 'पार्ट' (part) **अदा कर रहे हैं।**

जब तक हम ईश्वर की इलाही योजना अथवा **'हुकम' के अनुकूल अपना** अपना-अपना पार्ट अदा करते हैं तब तक इलाही **खेल तमाशा** निर्विघ्न चलता रहता है तथा **'कलाकारों'** को अथवा जीवों को सम्मान मिलता रहता है, परन्तु जब 'जीव' अपने मालिक **ईश्वर को भूल जाते हैं** तब वह **मोह-माया की**

अज्ञानता में 'अहम्' के कारण स्वयं ही मालिक तथा कर्त्ता बन बैठते हैं और मन–मर्जी करने लगते हैं। तब यह विमुख जीव **इलाही बख्शिशों से वंचित हो जाते हैं** तथा **'कर्मबद्ध'** होकर मायिकी नियम **"जो मैं कीआ सो मैं पाइआ" के अनुसार दुख–सुख भोगते हैं।**

मन मेरे सतिगुर कै भाणै चलु ॥
निज घरि वसहि अंम्रितु पीवहि ता सुख लहहि महलु ॥ (पृ. ३७)

आपणै भाणै जो चलै भाई विछुड़ि चोटा खावै ॥ (पृ. ६०१)

बिजली का करंट (electric current) पावर हाउस (power house) में उत्पन्न होता है। यह विद्युत **प्रत्येक बल्ब (bulb)** को प्रकाशित करती है। बल्ब के अन्दर सूक्ष्म तार (filament) होती है, जिसके द्वारा विद्युत प्रकाश आता है। इस तार (filament) के चारों ओर अनेक रंग, रूपों वाले **शीशे के आवरण चढ़े होते हैं।** जब इसमें करंट आता है तो **बल्ब प्रकाशित अर्थात् 'जीवत' हो जाता है** अन्यथा यह **'बूझ'** जाता है या **'मुरदा'** हो जाता है। बल्ब को जीवन या प्रकाश 'करंट' से प्राप्त होता है और करंट पावर–हाउस से आता है। अर्थात् 'बल्ब' का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, इसका **अस्तित्व तो करंट** से ही **बनता है।**

यदि बल्ब अपने **'जीवन–प्रकाश' के स्त्रोत को भूल जाए या उसे झुठला कर अपना पृथक 'अस्तित्व' जतलाए** तो वह **झूठा है, पाखंडी है** तथा उसके 'अहम्' का पृथक अस्तित्व **कूड़ है।** मूल या वास्तविक अस्तित्व तो ईश्वर तथा उसमें से उत्पन्न 'करंट' या 'नाम' का ही है। जो 'जीव' रूपी बल्ब का **जीवन दाता** है।

ठीक इसी प्रकार ईश्वर का **अस्तित्व** एक ही है और इसी में से जीवन रूपी 'ज्योति' प्रत्येक जीव के अन्दर प्रकाशमान है। परन्तु माया रूपी **भ्रम की अज्ञानता के कारण जीव** स्वयं को **पृथक अस्तित्व** मानता है तथा यह समझता है कि वह स्वयं ही सम्पूर्ण रूप से कर्त्ता है। इसी कारण उसके जीवन के **हर पहलू में मैं–मेरी प्रकट होती रहती है।**

इस प्रकार माया के 'भ्रम' में अपने **अहम्** के कारण ईश्वर का 'प्रतिद्वंद्वी' (rival) बन बैठता है तथा **पाखंड (impersonification) का दोषी बनता है।**

जीव जो कुछ भी इस **अहम्** में करता है, सब मिथ्या ही है । गुरबाणी में जीव की **अहम्** वाली इस अवस्था को यूँ दर्शाया है –

हउ विचि आइआ इउ विचि गइआ ॥
हउ विचि जंमिआ हउ विचि मुआ ॥
हउ विचि दिता हउ विचि लइआ ॥
हउ विचि खटिआ हउ विचि गइआ ॥
हउ विचि सचिआरु कूड़िआरु ॥
हउ विचि पाप पुंन वीचारु ॥
हउ विचि नरकि सुरगि अवतारु ॥
हउ विचि हसै हउ विचि रोवै ॥
हउ विचि भरीऐ हउ विचि धोवै ॥
हउ विचि जाती जिनसी खोवै ॥
हउ विचि मूरखु हउ विचि सिआणा ॥
मोख मुकति की सार न जाणा ।
हउ विचि माइआ हउ विचि छाइआ ॥
हउमै करि करि जंत उपाइआ ॥
हउमै बूझै ता दरु सूझै ॥
गिआन विहूणा कथि कथि लूझै ॥
नानक हुकमी लिखीऐ लेखु ॥
जेहा वेखहि तेहा वेखु ॥ (पृ. ४६६)

इलाही **'ज्योति' के प्रकाश के बिना'** माया की अज्ञानता के भ्रम अथवा **'अहम्'** को गुरबाणी यूँ ब्यान करती है –

मन कह अहंकारि अफारा ॥
दुरगंध अपवित्र अपावन भीतरि जो दीसै सो छारा ॥
तिनि कीआ तिसु सिमरि परानी जीउ प्रान जिनि धारा ॥
निसहि तिआगि अवर लपटावहि मरि जनमहि मुगध गवारा ॥
अंध गुंग पिंगुल मति हीना प्रभ राखुहु राखनहारा ॥
करन करावनहार समरथा किआ नानक जंत बिचारा ॥ (पृ. ५३०)

जिस प्रकार '**अंधकार**' का अपना कोई अस्तित्व नहीं है, यह तो केवल **प्रकाश की अनुपस्तिथि** या गैरहाजरी का ही नाम है ।

इसी प्रकार '**माया**' का भी अपना कोई अस्तित्व नहीं है । यह तो केवल **इलाही प्रकाश की अनुपस्तिथि या गैरहाजरी में 'भ्रम' ही है ।**

हमारी **'आत्म ज्योति' के चारों ओर जब मायिकी भ्रम भ्रलाव की परछाई पड़ जाए** तो हमारे मन को यह प्रतीत होता है कि **मेरा कोई पृथक अस्तित्व है** और इस **पृथक अस्तित्व अथवा मैं–मेरी के "द्वैत–भाव" को ही 'अहम' कहा जाता है, जिसका प्रदर्शन मैं–मेरी के द्वारा होता रहता है।**

जिस प्रकार **अंधकार** तथा **प्रकाश** एक दूसरे के **विपरीत** हैं और इकट्ठे नहीं रह सकते । इसी तरह **इलाही प्रकाश** और **माया का अंधेरा या भ्रम भी बिल्कुल एक दूसरे से उलट है** तथा **एक ही समय में दोनों एक साथ नहीं हो सकते ।**

दूसरे शब्दों में जब हमारे अन्तर–आत्मिक अनुभव में **ईश्वर के प्रति श्रद्धा भावना होती है** तो माया का भ्रम अथवा **अहम् का अभाव होता है ।**

इसके विपरीत जब हमारे मन पर **माया के भ्रम की छाया पड़** जाती है तो हमारा मन मैला हो जाता है तथा हम इलाही प्रकाश से वंचित हो जाते हैं ।

हउमै नावै नालि विरोधु है दुइ न वसहि इकि ठाई ।। (पृ. ५६०)

हउ हउ भीति भइओ है बीचो सुनत देसि निकटाइओ ।।
भांभीरी के पात परदो बिनु पेखे दूराइओ ।। (पृ. ६२४)

जब हम होते तब तू नाही अब तू ही मै नाही ।। (पृ. ६५७)

माया के भ्रम का **आवरण**
माया की अज्ञानता का **अंधकार**
मैं–मेरी का **अहसास**
पृथक व्यक्तित्व का **भ्रम**
द्वैत–भाव की **प्रवृत्ति**

को ही '**अहम**' कहा जाता है ।

अनेक योनियों में से गुजरते हुए हमारे अन्त – करण में 'अहम्' तथा **मैं – मेरी का अहसास अत्यंत दृढ़ हो चुका है ।** चौरासी लारव योनियों में तो हम **अहम् की भावना से अनभिज्ञ थे** परन्तु मनुष्य योनि में हमें ईश्वर ने बुद्धि दी है और समय – समय पर गुरू, अवतार, संत तथा भक्तों के द्वारा और उनके द्वारा रचित बाणी के द्वारा हमें आत्मिक उपदेश मिलते रहे हैं, कि **"हे जीव तूं "ज्योति स्वरूप" है अपनी आत्मिक विरासत को पहचानने का प्रयत्न कर"।**

मन तूं जोति सरूप है आपण मूलु पछाण ॥
मन हरि जी तेरै नालि है गुरमती रंगु माणु ॥ (पृ. ४४१)

अनेक जन्मों से हम **कूड़ "अहम्" का इतना अभ्यास करते आए** कि अब यह **अहम** ही हमारे तन – मन और अन्तःकरण की गहराईयों में **धस – बस – रस चुका है तथा सहज स्वभाव ही हमारे जीवन के हर क्षेत्र में अनजाने ही अपने आप मैं – मेरी के रूप में प्रकट होता रहता है ।**

इस प्रकार अनेक जन्मों से हमने अपने आप को '**अहम्**' की छोटी सी **काल कोठरी में कैद किया हुआ है** तथा मोह – माया की दलदल में **पलच – पलच कर "झूठे धन्धे मोह"** में अपना अमूल्य जन्म **व्यर्थ गंवा रहे हैं ।**

अहम् की **काल कोठरी** का दण्ड हमने **स्वयं आमंत्रित किया हुआ** है । अनेक जन्मों से हम इस काल कोठरी की कैद में दुरवदायी जीवन व्यतीत कर रहे हैं ।

जगि हउमै मैलु दुरवु पाइआ मलु लागी दूजै भाइ ॥ (पृ. ३९)

जब इहु मन महि करत गुमाना ॥
तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥ ....
जब इनि अपुनी अपनी धारी ॥
तब इस कउ है मुसकलु भारी ॥ (पृ. २३५)

हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ॥ (पृ. ५६०)

गुरू – अवतारों – महापुरूषों ने तो समय – समय पर अपने जीवन तथा वाणी के द्वारा हमें 'अहम्' के विषय में ज्ञान दिया है तथा इसकी **कैद से मुक्त होने की सरल तथा सही विधि बताई है ।** इन उत्तम, अमूल्य उपदेशों के प्रचार के लिए

अनेक धर्म स्थान बने हुए हैं। इन उपदेशों तथा वाणियों का प्रचार भी अनेक ढंगों से हो रहा है।

परन्तु फिर भी अहम् की इस स्वयं आमंत्रित **दुखदायी कैद कूड़ माया के भ्रम में से निकलने या मुक्त होने का हमें–**

ख्याल ही नहीं
लालसा ही नहीं
आवश्यकता ही नहीं
फुर्सत ही नहीं
चाव ही नहीं
उद्यम ही नहीं
निश्चय ही नहीं

अहम् की भ्रांति हमारे मन, चित्त, अन्तःकरण में **घुल–मिल** गई है तथा हमारे जीवन के ताने–बाने में **ओत–प्रोत परिपूर्ण हो चुकी है। यहां तक कि हम 'अहम्' का ही स्वरूप बन गए हैं।**

अहम् के 'अंध–गुबार' में अपनी **छोटी सी मायिकी 'काल–कोठरी' से बाहर हमें न तो कुछ दिखता है, न कुछ सुझता है, न अनुभव होता है।** हम अहम् के मुफ्त **"बे खरीद गोले"** (bonded slaves) तथा **'कठ–पुतलियां' बने हुए हैं।** माया के पांच तत्व काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार के **इशारों या 'ताल' पर दिन–रात नाचते हुए अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ गंवा रहे हैं।**

हउमै सभु सरीरु है हउमै ओपति होइ ॥
हउमै वडा गुबारु है हउमै विचि बुझि न सकै कोइ ॥
हउमै विचि भगति न होवई हुकमु न बुझिआ जाइ ॥
हउमै विचि जीउ बंधु है नामु न वसै मनि आइ ॥ (पृ. ५६०)

चाहे **'अहम्'** की कोई सत्ता नहीं है यह तो केवल हमारे मन का **'भ्रम'** ही है, परन्तु इसने हमारे जीवन तथा सारी सृष्टि में–

'मैं' का अहंकार
'मेरी' आ अपनत्व
'मोह' की पकड़

स्वार्थ
धोखेबाजी
बेईमानी
छीना छपटी
लूट–मार
काम
क्रोध
लोभ
झूठ
ईर्ष्या द्वैष
जलन
अत्याचार
जुल्म
लड़ाईयां
झगड़े

आदि अनेक **तुच्छ रूचियों का बोलबाला, शोरगुल तथा हाहाकार मचा** रखा है । जिस कारण दुनियां में **शांन्ति तथा दैविय गुणों का प्रभाव बहुत कम दिखाई देता है ।**

सरमु धरमु दुइ छपि खलोए कूड़ु फिरै परधानु वे लालो ।। (पृ. ७२२)

कितनी **आश्चर्यजनक तथा हास्यप्रद बात है कि इतनी–**

विद्यक उन्नति
वैज्ञानिक अविष्कार
ज्ञान के विकास
दार्शनिकता की बारीकियां
धर्म प्रचार के बाहुल्य
कर्म कांडों की भरमार
तीक्ष्ण बुद्धि

के होते हुए भी हम इस 'कूड़ अहम्' के मिथ्या भ्रम तथा धोखे को–

समझने

जानने

विचार करने तथा

पहचानने

में **असमर्थ हैं !!!**

हम इस '**झूठे अहम्' को सत्य जान कर** जन्म–जन्मों से इसके **'बे–खरीद' गुलाम बने हुए थे, अब भी बने हुए हैं** तथा इसी में **अपना मान समझते हैं**। एक दूसरे से **बढ़–चढ़ कर** (competition) अपने 'अहम्' का प्रदर्शन करने में अपनी बढ़ाई तथा भलाई समझते हैं। चाहे इम इस **अहम् की गुलामी में** अनेक दुख–कलेश, चिंता, रोग, यम का दण्ड तथा **नर्क भोगते रहते हैं।**

हउमै विचि जगतु मुआ मरदो मरदा जाइ ॥ (पृ. ५५५)

हउमै वडा गुबारु है हउमै विचि बूझि न सकै कोई ॥ (पृ. ५६०)

हउमै दीरध रोगु है दारू भी इसु माहि ॥ (पृ. ४६६)

'अहम्' के भयानक दीर्ध रोग के कारण **हम केवल खुद ही नर्क नहीं भोगते** अपितु अपनी **अज्ञानता** के कारण समस्त संसार में अपने मन की **तुच्छ रूचियों की दुर्गन्ध** को अपने कर्मों और विचारों द्वारा **फैला रहे हैं**। इस प्रकार हम पूर्ण रूप में अपने अहम् में से उत्पन्न **ग्लानी का संक्रमण** (infection) सारे **संसार को लगा रहे हैं** तथा ईश्वर की सुन्दर, सुखदायी तथा निर्मल प्रकृति को प्रदूषित कर रहे हैं।

अचम्भे की बात तो यह है कि **'अहम'** के विषय में इतना ज्ञान पढ़–सुन कर भी हम इसकें **भ्रम–जाल की झूठी दुनियां में से निकलने के लिए तैयार नहीं,** क्योंकि अनेक जन्मों से इस मिथ्या 'अहम्' का हमने इतना अभ्यास किया है कि **हम अहम् का स्वरूप ही बन गए हैं।**

सच तो यह है कि **'अहम' हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है अथवा हमारा जीवन रूप ही बन चुका है**। यहां तक कि हमने गुरू–अवतारों

के द्वारा चलाए गए **धर्म तथा उनकी बाणी या उपदेशों पर भी अपने अहम् की रंगत चढ़ाई हुई है ।** हम धर्म का प्रयोग अपनी **मायिकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते** हैं या **अहम् को और सुद्‌ढ़ बनाने के लिए करते हैं ।**

इस प्रकार जब हमारे **'धर्म' पर ही 'अहम्' का रंग चढ़ जाए तो** हमें मज़हबी तअसुब (religious fanaticism) **का रंग चढ़ जाता है** तथा हम धर्म के नाम पर अत्यन्त नफरत, ईर्ष्या, द्वैष, लड़ाईयां, झगड़े, अत्याचार व ज़ुल्म करते हैं ।

इस **'साम्प्रदायिक जनून'** के अन्धे जोश में गुरू, अवतारों, महापुरूषों तथा निर्दोष प्राणियों पर अकथनीय तथा असह्य अत्याचार व ज़ुल्म किये गए हैं तथा अब भी हो रहे हैं ।

इस **'धार्मिक जनून'** के अन्धे जोश में **धर्म के नाम** पर तथा धर्म की आड़ में **धर्म का ही –**

निरादर
निंदा
अवज्ञा
बदनामी
अविश्वास

को **अनजाने ही प्रकट करते हैं ।**

हमारे इस अन्धे **'सामप्रदायिक जनून'** का आम साधारण जनता पर अति बुरा, **हानिकारक तथा गहरा असर होता है ।** जिसके द्वारा "ईश्वर के अस्तित्व" तथा धर्म के विषय में कई प्रकार की शंकाएं पैदा हो जाती हैं । सच तो यही है कि आम लोगों के मन में ईश्वर के प्रति बे–परवाही, विमुखता, अश्रद्धा तथा नास्तिकता फैलाने में इस **अहम्ग्रस्त मज़हबी जनून का बहुत बड़ा हाथ है ।**

इसका प्रत्यक्ष प्रमाण पुरातन इतिहास तथा आजकल की **साम्प्रदायिक लड़ाईयां** (communal riots) है ।

जब हमारा '**अहम्' साम्प्रदायिकता का चोला पहन कर** धर्म के नाम पर क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाईयां, झगड़े, अत्याचार, जुल्म में **प्रवृत होता है** तब उसे ही '**साम्प्रदायिक जनून' कहा जाता है ।**

अन्धे साम्प्रदायिक जनून में हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है तथा हमें अच्छे–बुरे, झूठ–सच, पाप–पुण्य, दैवीय गुण और राक्षसी अवगुणों का **चुनाव करने की विवेक बुद्धि नहीं रहती ।**

इसके **विपरीत** प्रत्येक धर्म हमें–

दया
क्षमा
मैत्री–भाव
प्यार
सेवा

आदि **दैवीय गुणों को अपनाने की प्रेरणा देता है ।**

इलाही धर्म के दैवीय गुणों के प्रदर्शन

तथा

अहम्ग्रस्त "साम्प्रदायिक जनून" के प्रदर्शन

में **अत्यन्त अन्तर है** तथा इन दोनों के **परिणाम** एक दूसरे से **उलट या विपरीत हैं ।**

खोटे कउ खरा कहै खरे सार न जाणै ॥
अंधे का नाउ पारखू कली काल विडाणै ॥
सूते कउ जागतु कहै जागत कउ सूता ॥
जीवत कउ मूआ कहै मूए नहीं रोता ॥
आवत कउ जाता कहै जाते कउ आइआ ॥
पर की कउ अपुनी कहै अपनो नही भाइआ ॥
मीठे कउ कउड़ा कहै कड़ूए कउ मीठा ॥
राते की निंदा करहि ऐसा कलिमहि डीठा ॥ (पृ. २२९)

प्रकाश की **'अनुपस्तिथि'** का नाम अंधकार है ।

अनुभवी ज्ञान के अभाव का नाम **'माया'** है ।

माया के भ्रम के अंध गुब्बार में से **अहम् प्रकट होता है ।**

जहां अहम् का बोलबाला हो वहां **इलाही भावना नहीं हो सकती ।**

जिस प्रकार **'प्रकाश'** तथा **अंधकार** एक दूसरे के **उलट तथा विपरीत** है, उसी प्रकार **अहम् का अहसास** तथा इलाही **'श्रद्धा भावना' एक दूसरे के विपरीत हैं तथा उलटे हैं ।**

ईश्वर का अस्तित्व 'सच' तथा 'अटल' है । **अहम् का कोई अस्तित्व नहीं, यह तो केवल मन का भ्रम है ।**

दूसरे शब्दों में **अज्ञानता रूपी 'माया' ने** हमारी आत्मा को अनेक जन्मों से **अहम् की अफीम के नशे में 'सुला' रखा है ।**

तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी ।। (पृ. ९२०)

यदि कोई हमारे साथ छल फरेब करे या **धोखा** दे तो हम इस **धोखे की शिकायत बार-बार करते हैं** और **'रोष' प्रकट करते हैं परन्तु** अचम्भे की बात है कि इस अहम् रूपी अफीम के 'नशे' में अज्ञानता रूपी माया ने हमारी 'आत्मा' के साथ सबसे बड़ा तथा **दीर्ध 'धोखा'** (greatest mental fraud) **किया हुआ है ।**

आश्चर्यजनक बात तो यह है कि हमें **इतने बड़े निजी धोखे का –**

पता ही नहीं

आभास ही नहीं

ज्ञान ही नहीं

होश ही नहीं

शिकायत ही नहीं

रोष ही नहीं

तथा माया की इस अटूट "नींद" या "पीनक" में से जागने या इसके धोखे से बचने का हमें–

ख्याल ही नहीं
लालसा ही नहीं
आवश्यकता ही नहीं
उद्यम ही नहीं
निश्चय ही नहीं !!!

कोई भी जीव यह मानने को कदापि तैयार नहीं कि **उसमें 'अहम्' है ।** जब कि वास्तव में वह दिन–रात, पल–पल 'अहम्' में ही विचरण करता है, जीवन व्यतीत करता है । मैं–मेरी ही उसका "जीव आधार" है । जीव का यही कहना कि **"मुझ में अहम् नहीं है"** इस बात का दृड़ सबूत है कि अहम् उसके अन्दर इतना धस–बस गया है कि वह **अहम् का ही स्वरूप बन गया है ।** इसलिए उसे अहम् का अहसास ही नहीं रहा । वह **अहम् के अस्तित्व** से बेखबर हो कर, अज्ञानका में झीठ बनकर कार्य करता है तथा द्वैत भाव के भ्रम–गढ़ में गलतान रहता है ।

यदि कोई व्यक्ति तपेदिक जैसे भयंकर रोग से पीड़ित हो और उसे अपने रोग का आभास ही न हो तो उसे उपचार की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती ।

ठीक ऐसी ही अहम्ग्रस्त जीवों की दशा होती है । उन्हें अपने **दीर्ध तथा गुप्त रोग** का ज्ञान ही नहीं होता, अहसास ही नहीं होता । बेशक इसी अहम् के **दीर्ध रोग** के कारण वह स्वयं आमंत्रित नरकीय जीवन व्यतीत करते हैं और इसी में संतुष्ट रहते हैं ।

इन पंचन मेरी मनु जु बिगारिओ ।।
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ।। (पृ. ७१०)

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ।।
किंचन प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ।। (पृ. ८५७)

एह माइआ जितु हरि बिसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ।। (पृ. ९२१)

यदि किसी बादशाह का **शहजादा** (prince) खो जाएँ और किसी मछेरे को मिल जाए तो वह मछेरा उसे अपने काम में लगा लेता है तथा शहजादे को '**धोखे**' से अपनी गुलामी (bonded slavery) में रख कर अपने काम करवाता है । इस प्रकार वह शहज़ादे को उसकी **"शाही विरासत" से वंचित**

रखता है। यह शहजादे के साथ **दीर्घ धोखा** है। चाहे गुरबाणी पुकार – पुकार कर हमारी **'शाही' विरासत** की घोषणा कर रही है कि **"मन तूं जोति सरूपु है आपणा मूलु पछाणु"** वाली हमारी दुर्गति हो रही है तथा हम **"पलचि पलचि सगली मूई झूठै धंधै मोहु"** अनुसार फंस कर दुःखी हो रहे हैं तथा अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।

उपरोक्त विचारों में **"माया"**, **"प्रकाश"**, **"अन्धकार"**, **"भ्रम – भुलाव"**, **"अहम्"**, **"अंधकार का गर्त"** आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है, इनका कोई पृथक अस्तित्व नहीं है, यह तो 'मन' के अनेक भांति के –

रंग

तरंग

ख्याल

मनोभाव

भावनाएं

ही हैं।

पीछे बताया जा चुका है कि सृष्टि में इलाही **'ज्योति'** की **'जीवन – रौं'** (जीवन – धारा) रम **रही परिपूर्ण है। यह "ज्योति" तो "एक" ही है** और निर्मल है परन्तु जब यह ज्योति हमारे मन के द्वारा बाहर की ओर प्रकाशित होती है तो हमारे **मन के भांति – भांति के –**

ख्यालों

मनोभावों

भावनाओं

निश्चयों

के **रंग – तरंग अनुसार "ज्योति" का प्रकाश होता है।**

उदाहरण स्वरूप **विद्युत करंट तो एक ही होता है** परन्तु उसके प्रकाश का रंग 'बल्बों' के भिन्न – भिन्न रूप और रंगों के अनुकूल होता है।

गुरबाणी में मन की **अनेक तरंगों** का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

इहु मनुआ खिनु न टिकै बहु रंगी
दह दह दिसि चलि चलि हाढे ॥
गुरु पूरा पाइआ वडभागि हरि मंत्र दीआ मनु ठाढे ॥ (पृ. १७१)

मन तूं गारबि अटिआ गारबि लदिआ जाहि ॥
माइआ मोहणी मोहिआ फिरि फिरि जूनी भवाहि ॥
गारबि लागा जाहि मुगध मन अंति गइआ पछुतावहे ॥
अहंकार तिसना रोगु लगा बिरथा जनमु गवावहे ॥ (पृ. ४४१)

मनि मैले सभु किछु मैला मनि धोते मनु हछा न होइ ॥
इह जगतु भरमि भुलाइआ विरला बूझै कोई ॥ (पृ. ५५८)

माइ मनु मेरो बसि नाहि ॥
निस बासुर बिखिअन कउ धावत
किहि बिधि रोकउ ताहि ॥
बेद पुरान सिम्रित के मत सुनि निमख न हीए बसावै ॥
पर धन पर दारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै ॥ (पृ. ६३२)

मन के अधिक तरंग किउ दरि साहिब छुटिऐ ॥ (पृ. १०८८)

क्रमशः